साप्ताहिक
Live not just breaTHE

दि कार्मिक पोस्ट

MPHIN/2015/63220
MP/IDC1528/16-18

Global School Of Excellence, Obedullaganj

वर्ष : 7, अंक : 10 (प्रति बुधवार), इन्दौर, 27 अक्टूबर से 2 नवंबर 2021 पेज : 8 कीमत : 3 रुपये

नदियों का पुनर्जीवन और जल नीति का पुनरुद्धार

नई दिल्ली।अनादि काल से भारत के लोगों का नदियों के साथ बेहद आत्मीय रिश्ता रहा है और यह हमारे सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन का एक अविभाज्य अंग है। तमाम लोग नदियों के जल को पवित्र और उपचारात्मक शक्ति से लैस मानते हैं। हालांकि आजादी के बाद से अपनाई गई जल नीति ने नदियों को बुनियादी तौर पर आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति करने वाले एक संसाधन के तौर पर ही देखा है। नदियों के संबंध में इस मशीनी नजरिये ने उनकी हालत को काफी खराब किया है और आज स्थिति यह हो गई है कि कई नदियों का प्रवाह बेहद कम हो गया है और वे प्रदूषण से भरे नाबदान बन चुकी हैं।

नई राष्ट्रीय जल नीति में हमारी नदी प्रणालियों को पुनर्जीवित करने को सबसे ज्यादा अहमियत दी गई है। नदियों की अनमोल आर्थिक भूमिकाओं को स्वीकार करने के साथ ही नदियों के संरक्षण एवं पुनरुद्धार को प्राथमिकता एवं बुनियादी अहमियत दी गई है। इसके लिए अब यह पूरी तरह साफ हो चुका है कि नीति में फौरन बदलाव के बगैर आर्थिक या कोई अन्य उपयोगी उद्देश्य पूरा करना तो दूर, हमारी नदियों का गौरव भी जल्द ही अतीत की बात हो जाएगा। नदियों को विशुद्ध रूप में नदी-भूदृश्य कहा जाता है क्योंकि वे असल में अंतर्संबद्ध जलविज्ञान एवं पारिस्थितिकी प्रणालियां हैं। एक नदी सिर्फ जल धारा तक ही सीमित नहीं होती है बल्कि उसमें सभी तरह की जलधाराएं एवं उनके जलग्रहण-क्षेत्र का भी समावेश होता है। नई जल नीति में कहा गया है कि नदी घाटियों को पानी-ऊर्जा-जैवविविधता-तलछट के एक गतिशील साम्यावस्था के रूप में देखा जाना चाहिए। इस तरह जैव विविधता, भू-संरचना, जलनिकासी, आर्द्र भूमि एवं जलवाही स्तर जैसे विभिन्न घाटी अवयवों की अखंडता बनाए रखना बेहद अहम है। नई जल नीति में यह अनुशंसा की गई है कि जलदायी क्षेत्र समेत नदी घाटी को ही किसी भी जल संरक्षण एवं पुनरुद्धार योजना की इकाई बनाया जाना चाहिए। निचले स्तर से ऊपरी स्तर तक नदी घाटी संगठनों का ढांचा खड़ा किया जाए ताकि वे लोकतांत्रिक, समावेशी, बहुल-हितधारक मंचों के तौर पर काम कर सकें। नदियों में फिर से प्रवाह लाने के लिए तत्काल ये कदम उठाने की जरूरत है- जलग्रहण क्षेत्रों में फिर से वनस्पतियां उगाना, भूजल निकासी का सख्त नियमन और नदी ताल से पानी निकालना, बालू एवं कंकर के बेहिसाब खनन पर लगाम लगाना और मुख्य जलधारा एवं उसकी सहायक नदियों पर बने सभी ढांचों का पर्यावरणीय प्रवाह बनाए रखना। पर्यावरणीय प्रवाह का आकलन एक समयबद्ध तरीके से सभी नदी घाटियों के लिए किया जाना चाहिए ताकि साल के सभी मौसम में नदियों में समुचित जल प्रवाह को सुनिश्चित किया जा सके। इससे नदियां अपने सारे पारिस्थितिकीय प्रकार्यों को अंजाम दे सकती हैं जिनमें भूजल रिचार्ज और स्थानीय स्तर के खास बायोटा (किसी विशेष क्षेत्र में मौजूद सभी पेड़-पौधों एवं पशु-पक्षियों) को दिया जाने वाला प्रोत्साहन भी शामिल है। नई जल नीति में कहा गया है कि नदियों में अविरल धारा सुनिश्चित किए बगैर निर्मल धारा का होना असंभव है। इसमें नदियों का अधिकार अधिनियम का मसौदा तैयार करने के लिए सभी हितधारकों के बीच गहन विचार-विमर्श की बात भी की गई है ताकि नदियों को समग्र कानूनी संरक्षण मिल सके। इस तरह नदियों को प्रवाह बनाए रखने, इधर-उधर घुमावदार मार्ग से होते हुए बहने और समुद्र से मिलन का अधिकार दिया जा सकेगा। आजादी के बाद की बाढ़ नीति मुख्य रूप से बड़े बांधों एवं तटबंधों पर ही केंद्रित रही है। लेकिन समय के साथ समस्या बढ़ती ही गई है। तटबंधों में दरार आने, खराब ढंग से बनीं एवं खराब रखरखाव वाली नहरें और बाढ़ से प्रभावित होने वाले मैदानों एवं जल-निकासी रेखाओं पर बस्तियां बसाने से भी स्थिति बिगड़ी है। तटबंधों ने पहले से ही गाद से भरी नदियों में नाटकीय रूप से तलछट बढ़ा दी है। ऊपरी जलग्रहण क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर अपरदन होने से नदियों में गाद बढ़ती गई है। इस तरह नदियों का तल उठने से नदियों के स्वभाव में अस्थिरता आई है और अक्सर तटबंध तोड़कर रिहायशी इलाकों तक बाढ़ का पानी पहुंचने लगा है। नदी या समुद्र की तरफ जाने वाले प्राकृतिक मार्गों के नष्ट होने से बाढ़ की समस्या और भी बढ़ गई है। प्राकृतिक मार्ग अवरुद्ध होने से बाढ़ का पानी शहरी एवं ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में हमारे घरों एवं कार्यस्थलों तक पहुंचने लगा है।

इस लिहाज से बाढ़ प्रबंधन के बारे में हमारा समग्र दृष्टिकोण बाढ़ नियंत्रण की जगह %बाढ़-सूचित विकास% या %बाढ़ के संदर्भ में लचकदार जीवन एवं आजीविका का निर्माण% होना चाहिए। बाढ़ की आशंका वाली नदी प्रणालियों में %नदी को जगह देने% वाली परियोजनाएं नदी-केंद्रित ढंग से चलाई जानी चाहिए। पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986 में उल्लिखित नदी नियमन क्षेत्रों का निर्धारण कर अधिसूचित कर देना चाहिए ताकि नदी-तटों एवं बाढ़ के मैदानों में विकास-जन्य हस्तक्षेपों को रोका जा सके। पानी के संरक्षण और %सेवा की भावना और देखभाल की नैतिकता% के वाहक के तौर पर महिलाओं की अहम भूमिका को स्वीकार करते हुए नई जल नीति के हरेक खंड में लिंग का खास तौर पर जिक्र किया गया है। जल नीति के सभी खंडों को लैंगिक रूप से संवेदनशील बनाने के साथ ही इसके लिए विशिष्ट प्रावधान भी किए गए हैं। जल नीति में काफी हद तक उपेक्षित इन आयामों पर बल देने के लिए लिंग, समानता एवं सामाजिक समावेशन पर एक पृथक खंड भी है। जल संसाधनों पर जलवायु परिवर्तन के विविध संभावित प्रभावों के कारण मौसमी घटनाओं में आए त्वरित बदलावों को स्वीकार करते हुए इस नीति में इन चुनौतियों से निपटने के लिए एक समग्र कार्रवाई का एजेंडा भी रखा गया है। नई जल नीति का संस्थापक सिद्धांत ही यह है कि इसमें भारत की अतिशय विविधता की झलक मिलनी चाहिए।

इस बात के मद्देनजर देश के तीन भौगोलिक इलाकों- हिमालयी, वर्षा वाले क्षेत्र और तटीय क्षेत्र पर विशेष ध्यान दिया गया है। अतीत में उपेक्षा के शिकार रहे इन इलाकों की खास जरुरतों को ध्यान में रखते हुए जल नीति में विशेष प्रावधान रखे गए हैं। अंतर्देशीय जलीय मार्गों पर आवागमन और परिवहन के लिए नीति में बेहतर नियमन, सुधरी हुई व्यवस्था और सुरक्षा व्यवस्था एवं अधिक सक्षम परिचालन के लिए निवेश की जरूरत पर जोर दिया गया है। जल नीति में कहा गया है कि स्थानीय समुदायों के यात्री एवं माल परिवहन के साथ ही छोटे कारोबारों एवं विनिर्माताओं को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। ऐसा करने से स्थानीय अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहन मिलेगा और रोजगार अवसर भी पैदा होंगे। विश्वसनीय आंकड़ों का साथ मिलने पर जल प्रबंधन अधिक असरदार हो जाता है। हाल में भारत जल संसाधन सूचना प्रणाली जैसे बढ़िया सुधार होने के बावजूद आंकड़ों के दायरे एवं गुणवत्ता में अब भी बड़ी खाई मौजूद है। नई जल नीति में वास्तविक समय में डेटा उपलब्धता की तरफ अग्रसर समग्र डेटा संकलन जैसी कई अनुशंसाएं की गई हैं। केंद्र एवं राज्यों की सरकारों, शोध संस्थानों और नागरिक समाज रूपी विभिन्न हितधारक इस तरह से साझा राष्ट्रीय प्रयास करें जो सही मायनों में डेटा संकलन, विश्लेषण एवं अनुप्रयोग को लोकतांत्रिक बनाए। नई जल नीति जल अनुसंधान का व्यापक एवं केंद्रित एजेंडा पेश करने के साथ यह भी बताती है कि पानी से संबंधित शिक्षा को प्राथमिक स्तर से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक पाठ्यचर्चा का अविभाज्य हिस्सा बनाने की जरूरत है।

सागर

अल नीनो का पूर्वानुमान

स्कॉटलैंड। अल नीनो मौसम, खाद्य सुरक्षा, आर्थिक उत्पादकता और सार्वजनिक सुरक्षा पर असर डालता है। लेकिन इस बात पर बहस चल रही है कि जलवायु मॉडल उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में पहले और भविष्य की जलवायु स्थितियों को कितनी अच्छी तरह दोहरा सकते हैं और पूर्वानुमान लगा सकते हैं।

महासागरीय अम्लता एक ऐसा आंकड़ा है जो जलवायु परिवर्तन का पूर्वानुमान लगाने में मदद कर सकता है। एक शोध टीम ने प्रशांत महासागर की धाराओं में होने वाले बदलावों के संबंध में जलवायु मॉडल के द्वारा एक अहम खोज की है। खोज में कहा गया है कि अल नीनो घटनाओं को चलाने वाले ग्लोबल वार्मिंग की घटनाएं इसमें शामिल हैं। येल और सेंट एंड्रयूज विश्वविद्यालय की अगुवाई में किए गए इस शोध में कहा गया है कि कठिन पर्यावरणीय बदलावों के बारे में पूर्वानुमान लगाने के लिए जलवायु मॉडल सक्षम हैं। जलवायु मॉडल एक आवश्यक बदलाव के रूप में समुद्र की अम्लता के बारे में भी पता लगाते हैं। स्कॉटलैंड में सेंट एंड्रयूज विश्वविद्यालय के शोधकर्ता मैडिसन शैंकल ने कहा कि वैश्विक जलवायु मॉडल के द्वारा भूमध्यरेखीय प्रशांत क्षेत्र में समुद्र में होने वाले बदलावों को सटीकता से कैप्चर करना, आने वाले गर्म दशकों में क्षेत्रीय जलवायु के पूर्वानुमान लगाने के लिए महत्वपूर्ण है। पिछले एक दशक में, येल के कला और विज्ञान संकाय (एफएएस) में महासागरीय और वायुमंडलीय विज्ञान के प्रोफेसर एलेक्सी फेडोरोव ने अल नीनो घटनाओं तथा अल नीनो दक्षिणी दोलन के गर्म चरण सहित दुनिया भर में समुद्र में होने वाले बदलावों पर महत्वपूर्ण शोध किया है। दक्षिणी दोलन वह स्थिति है जिसमें प्रशांत महासागर में असामान्य रूप से पानी गर्म होता है। फेडोरोव और उनके शोध टीम ने जलवायु मॉडल सिमुलेशन का आयोजन किया जो अतीत में समुद्र के तापमान में आए बदलावों के बार में पता लगाते हैं। यह वह समय था जब वैश्विक तापमान कई डिग्री गर्म था, साथ ही वर्तमान में इस बात का पूर्वानुमान लगा सकता है कि भविष्य में कितनी गर्मी बढ़ सकती है और दुनिया भर में इसका क्या असर पड़ेगा। लेकिन इन वर्षों के दौरान, फेडोरोव के येल सहयोगियों जिनमें जलवायु वैज्ञानिक शामिल हैं, इन्होंने सोचा कि प्राचीन समय के तापमान के अलग-अलग आंकड़े कितने सही हैं और क्या जलवायु मॉडल सिमुलेशन पिछले जलवायु स्थिति का सटीकता से पता लगा सकते हैं। एफएएस में पृथ्वी और ग्रह विज्ञान के सहायक प्रोफेसर और प्रमुख शोधकर्ता हल ने कहा कि हमने तापमान के बजाय कुछ और मापकर अल नीनो के लिए जिम्मेवार हवाओं और धाराओं में बड़े बदलावों के बजाय समुद्र की अम्लता को मापा है। महासागरीय अम्लता, महासागरों में पीएच की मात्रा के बारे में बताती है, जो मुख्य रूप से कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा पर आधारित होती है। जिसे महासागर वायुमंडल से अवशोषित करते हैं। जैसे-जैसे समुद्र में कार्बन डाइऑक्साइड बढ़ता है, पीएच की मात्रा घटती जाती है। शोधकर्ताओं ने 26 से 53 लाख वर्ष पहले प्लायोसीन युग के दौरान भूमध्यरेखीय प्रशांत पर गौर किया था। प्लायोसीन युग पृथ्वी के अतीत की एक गर्म अवधि थी जिसे जलवायु वैज्ञानिक अक्सर आज के गर्म होने वाले ग्रह के एनालॉग के रूप में उपयोग करते हैं। शोधकर्ताओं ने तीन चीजों की खोज की। सबसे पहले, उन्होंने आज की तुलना में प्लायोसीन युग के दौरान पूर्वी भूमध्यरेखीय प्रशांत में बहुत अधिक अम्लता पाई। दूसरा, नए परिणाम सह-शोधकर्ता नताली बर्ल्स के जलवायु मॉडल के पूर्वानुमान से मेल खाते हैं, प्रशांत के इलाके में एक जल परिसंचरण प्रणाली के कारण जो

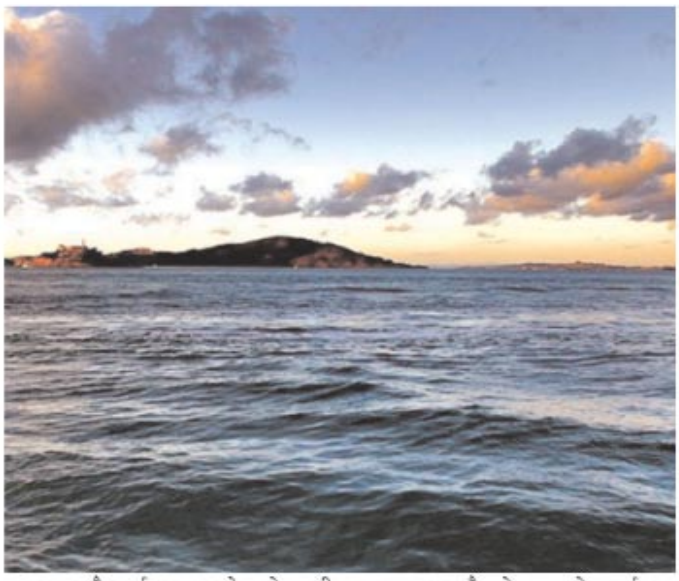

घूमता रहता है अर्थात एक कन्वेयर बेल्ट की तरह काम करता है, जो सतह को गहराई तक जाता है जिसमें पुराना पानी अधिक अम्लीय पाया गया। कुछ दशक पुराने होने के बजाय, जैसा कि आज पाया जाता है, गर्म प्लायोसीन युग में ऊपर उठा हुआ पानी उत्तरी प्रशांत से लगभग 1,000 मीटर की गहराई पर हजारों मील दूर तक पहुंचता है। तीसरा, शोधकर्ताओं ने पाया कि इस पुराने, अम्लीय पानी के फैलाव के लिए 'उलटा परिसंचरण' की आवश्यकता होती है। यह महासागर कन्वेयर बेल्ट की तरह होता है जिसका बर्ल्स और फेडोरोव द्वारा पहले पूर्वानुमान लगाया गया था। हल ने बताया कि यह नताली और एलेक्सी के मॉडल की पुष्टि करता है। इसका मतलब है कि जलवायु मॉडल का हमारा वर्तमान संग्रह बहुत अच्छी तरह से काम कर रहा है। यह हमें समुद्र में बड़े, क्षेत्रीय परिवर्तनों और जलवायु में होने वाले बदलाव का पूर्वानुमान लगाने में अधिक विश्वास दिखाता है। नई जानकारी यह भी बताती है कि समुद्र की अम्लता एक महत्वपूर्ण माप हो सकती है क्योंकि जलवायु मॉडल आज की तुलना में गर्म परिस्थितियों का अनुमान लगाने का प्रयास करते हैं। यह शोध नेचर जर्नल में प्रकाशित किया गया है। एफएएस में पृथ्वी और ग्रह विज्ञान के एक सहयोगी प्रोफेसर प्लानवस्की ने कहा, यह मॉडल और विचारों का परीक्षण करने का एक शक्तिशाली तरीका है। यह बताता है कि जलवायु प्रणाली कैसे काम करती है, यह अकेले ही पिछले तापमान के अनुमानों के आधार पर आकलन करने के लिए हमारी वर्तमान तकनीकी क्षमता से बहुत आगे है।

ताजार

भारी बारिश के बाद अब उत्तराखंड में बर्फबारी से बढ़ी मुश्किलें....!

देहरादून मौसम विज्ञान केंद्र के निदेशक बिक्रम सिंह ने कहा कि मजबूत पश्चिमी विक्षोभ के चलते भारी बारिश हुई और इसी वजह से उच्च हिमालयी क्षेत्र में बर्फ गिरी है। 17, 18, 19 और फिर 23, 24, 25 अक्टूबर को बागेश्वर, पिथौरागढ़, रुद्रप्रयाग, उत्तरकाशी, चमोली समेत उच्च हिमालयी क्षेत्र में बर्फ गिरी है। हालांकि इसे असामान्य नहीं कहा जा सकता। अक्टूबर में भी थोड़ी बहुत बर्फ गिरती है। लेकिन असामान्य तेज बारिश के चलते बर्फबारी भी अपेक्षाकृत ज्यादा हुई, ये कहा जा सकता है।

वहीं, मौसम विज्ञान केंद्र, देहरादून में काम कर रहे मौसम विज्ञानी रोहित थपलियाल कहते हैं कि 17 से 19 अक्टूबर की बारिश और बर्फ़बारी को छोड़ दें तो बारिश और बर्फ़बारी के साथ ही तापमान अब सामान्य की ओर है। वह कहते हैं कि 17-19 की बारिश-बर्फ़बारी से पहले तो अक्टूबर में तापमान सामान्य से अधिक ही था। अब यह %लांग पीरियड नॉर्मल% पर आ गया है। इस साल अक्टूबर में बारिश के सारे रिकॉर्ड टूट गए। जबकि वर्ष 2020 में अक्टूबर से दिसंबर के बीच राज्य में सामान्य से 71त्न कम बारिश हुई। इस अंतराल में सामान्य औसत बारिश 60.5 मिलीमीटर मानी जाती है। 2020 में 17.8 मिमी दर्ज की गई थी। वर्ष 2019 में अक्टूबर-दिसंबर के बीच 114.2 मिमी बारिश हुई थी। 2018 में 25.5, 2017 में 21.3 और 2016 में 16.2 मिमी बारिश दर्ज की गई। बारिश के साथ ऊंचाई वाले क्षेत्रों में बर्फबारी से देहरादून समेत पर्वतीय क्षेत्रों में अक्टूबर से ही मौसम सर्द हो गया है। वैज्ञानिकों के अनुमान और किसानों की हालत एकदम अलग हैं। उत्तरकाशी के हर्षिल घाटी के सुखी गांव के किसान-बागवान मोहन सिंह कहते हैं कि मौसम की आंख-मिचौली खेती पर भारी पड़ रही है। हर्षिल के सेब के साथ ही राजमा भी मशहूर हैं लेकिन बेमौसम बरसात से राजमा की फ़सल को भारी नुकसान हो रहा है। उनके अनुसार 17-18 तारीख से रोज़ दोपहर बाद बारिश हो रही है। इसके चलते राजमा खेतों में ही गीली हो गई है। वह बताते हैं कि इस बार राजमा की बुआई के समय अप्रैल-मई में भी बेमौसम बारिश हो गई थी। जिसकी वजह से फ़सल को काफी नुकसान हुआ था। अक्टूबर की बारिश ने किसानों को काफ़ी नुकसान पहुंचाया है।

1992 के बाद 6 गुना ज्यादा तेजी से गर्म हो रही हैं उत्तरी गोलार्ध की झीलें

न्यूयार्क। 1992 के बाद से उत्तरी गोलार्ध में मौजूद झीलें छह गुना ज्यादा तेजी से गर्म हो रही हैं। यह जानकारी हाल ही में यॉर्क यूनिवर्सिटी द्वारा किए शोध में सामने आई है, जोकि जर्नल ऑफ जियोफिजिकल रिसर्च- बायोजियोसाइंसेस के अक्टूबर अंक में प्रकाशित हुआ है। शोधकर्ताओं के अनुसार पिछले 100 वर्षों में यह पहला मौका है, जब यह झीलें इतनी तेजी से गर्म हो रही हैं।

लेक सुपीरियर, जोकि उत्तरी अमेरिका की सबसे बड़ी झीलों में से एक है। यह झील उत्तरी अमेरिका और कनाडा बॉर्डर पर सबसे उत्तरी छोर पर स्थित है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि यह उत्तरी गोलार्ध की उन झीलों में से एक है जो सबसे तेजी से गर्म हो रही है। 1857 के बाद से जब से बर्फ की स्थिति का आंकलन किया जा रहा है उसके बाद से यह झील दो महीनों से ज्यादा अवधि के बराबर बर्फ का आवरण खो चुकी है। यदि जापान की सुवा झील को देखें तो 1897 के बाद से प्रति शताब्दी 26 दिनों के बाद बर्फ का जमाव हो रहा है, यही नहीं यह हर दशक में अब केवल दो बार जम रही है। जबकि मिशिगन झील में ग्रैंड ट्रैवर्स बे को देखें तो वो बहुत तेजी से बर्फ खो रही है। इस खाड़ी में जमा बर्फ प्रति शताब्दी समय से लगभग 16 दिन पहले पिघल रही है। इस शोध और यॉर्क विश्वविद्यालय से जुड़ी प्रमुख शोधकर्ता सपना शर्मा ने इस बारे में जानकारी देते हुए बताया है कि यह झीलें प्रति शताब्दी औसतन 17 दिनों के बराबर बर्फ के आवरण को खो रही हैं। यही नहीं हमें यह भी पता चला है कि 1992 से 2016 के बीच 25 वर्षों में इन झीलों में बढ़ रही गर्मी 100 वर्षों की तुलना में करीब छह गुना ज्यादा तेज थी। गौरतलब है कि शोधकर्ताओं ने 2004 के बाद पहली बार उत्तरी गोलार्ध में मौजूद करीब 60 झीलों का अध्ययन किया है। यहां स्थिति को समझने के लिए उन्होंने औद्योगिक क्रांति से लगभग 107 से 204 साल तक पुराने बर्फ के फीनोलॉजी रिकॉर्ड का पुनर्मूल्यांकन किया है। इस बारे में प्रोफेसर शर्मा ने बताया कि हमारी कई झीलें टिप्पिंग पॉइंट के करीब हैं, जो हो सकता है जल्द ही अपनी बर्फ को खो दें, जिसका व्यापक तौर पर सांस्कृतिक और पारिस्थितिक प्रभाव पड़ेगा। शोध में जो निष्कर्ष सामने आए हैं उनके अनुसार यह झीलें औसतन समय के 11 दिन बाद जमी थी जबकि इनमें जमा बर्फ निर्धारित समय से करीब 6.8 दिन पहले पिघल गई थी। पिछले कई दशकों के दौरान सर्दियों में तेजी से बढ़ते तापमान ने इन झीलों में जमने वाली बर्फ पर असर डाला है। खासकर दक्षिणी और तटीय क्षेत्रों में मौजूद बड़ी झीलों में बर्फ के नुकसान की दर में वृद्धि हुई है। इस शोध से जुड़े अन्य शोधकर्ता डेविड रिचर्डसन ने जानकारी दी है कि विशेषतौर पर 1995 के बाद से सर्दियों के दौरान जमने वाले बर्फ के आवरण की अवधि में कमी आई है। यहां तक की कुछ झीलों की स्थिति तो ऐसी है जहां पहले के मुकाबले कहीं ज्यादा सर्दियों में बर्फ का जमना बिलकुल खत्म होता जा रहा है या फिर जहां है भी वहां नाम मात्र का रह गया है। उदाहरण के लिए, स्विट्जरलैंड और जर्मनी में कुछ गहरी झीलें, जो पहले सर्दियों के दौरान बर्फ से जम जाती थी, वो पिछले कुछ दशकों में स्थाई तौर पर अपनी बर्फ का आवरण खो चुकी हैं। अपने इस शोध में शोधकर्ताओं ने 60 झीलों का अध्ययन किया था, जिनमें 40 झीलें उत्तरी अमरीका की थी, इन झीलों में मिशिगन और सुपीरियर झीलें, मिनेसोटा में डेट्रॉइट झील, विस्कॉन्सिन में मोनोना और मेंडोटा झीलें, न्यूयॉर्क में कैजेनोविया और वनिडा झीलें और ओंटारियो की कई झीलें शामिल थी। वहीं यूरोप की 18 और एशिया की दो झीलें भी इस अध्ययन में शामिल की गई थी। इनमें साइबेरिया और रूस की बैकाल झील और जापान सुवा झील शामिल थी। ऐसा क्यों हो रहा है इस बारे में जानकारी देते हुए शोधकर्ता इस्तिन वूलवे ने बताया कि निष्कर्ष हमारी उम्मीदों के अनुरूप ही थे, क्योंकि हाल के दशकों में हवा के तापमान में वृद्धि दर्ज की गई है। हवा का तापमान, झील में जमने वाली बर्फ की गतिशीलता को प्रभावित करने वाले सबसे महत्वपूर्ण जलवायु चालकों में से एक है। साथ ही यह झील के ऊर्जा बजट से जुड़े विभिन्न घटकों पर भी असर डालता है। ऐसे में शोधकर्ताओं के अनुसार यदि झील में जमा बर्फ के आवरण में जो कमी आ रही है, उसे रोकने के लिए ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी लाना जरुरी है। उनके अनुसार इससे न केवल तापमान में हो रही वृद्धि के पारिस्थितिक बल्कि साथ ही सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक परिणामों को भी सीमित करने में मदद मिलेगी। बढ़ते तापमान की वजह से इन झीलों में पानी के तापमान और वाष्पीकरण की दर में वृद्धि हो रही है। साथ ही इससे पानी की गुणवत्ता भी घटती जा रही है और पानी में जहरीले शैवाल भी बढ़ रहे हैं।

- सामाार

वैज्ञानिकों ने बनाई प्रकाश छोड़ने वाली स्याही

नई दिल्ली भारतीय वैज्ञानिकों ने ऐसी स्याही तैयार की है, जिससे खास रसायनों की वजह से प्रकाश निकलता है। इसके जरिए कागज के मुद्रा-नोटों, दवाओं, प्रमाण-पत्रों, बैंक दस्तावेजों और ब्रांडेड उत्पादों आदि की नकल रोकी जा सकेगी। यह जादुई स्याही इन सभी चीजों पर टैग के तौर पर उपयोग हो सकती है। इसे मोहाली स्थित नैनो विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान (आईएनएसटी) की टीम ने तैयार किया है। यहां के वैज्ञानिक डॉ. संन्यासी नायडू बोड्डू ने बताया कि नई स्याही मेटल-फॉस्फेट पर आधारित है। यह तत्व जहरीला नहीं होता। इसमें प्रकाश उच्च स्तर पर छोड़ने का गुण होता है। इसका प्रकाश तापमान, बाहरी प्रकाश, मौसमी आर्द्रता आदि से प्रभावित नहीं होता, बल्कि स्थायी बना रहता है। डॉ. संन्यासीनायडू की टीम का यह काम क्रिस्टल ग्रोथ एंड डिजाइन और मटीरियल टुडे कम्युनिकेशन जर्नलों में प्रकाशित हुआ है। वैज्ञानिकों के अनुसार आज नकली चीजों से पूरी दुनिया परेशान है। वहीं प्रकाश छोड़ने वाली कई तरह की स्याहियां पहले से दुनिया में उपलब्धि हैं। लेकिन उनमें फोटॉन (ऊर्जा की इकाई का एक प्रकार) को उच्च मात्रा में छोड़ना होता है, बदले में वे हल्की ऊर्जा के फोटॉन उत्सर्जित करती हैं। अब तक उपयोग हो रही ऐसी स्याही में फ्लूरॉइड उपयोग होता है जो न केवल जहरीला है, बल्कि अस्थिर भी है। इस प्रकार की स्याहियों को सामान्य प्रकाश में नहीं देखा जाता, उनके लिए पराबैंगनी प्रकाश की जरूरत होती है। डॉ. संन्यासीनायडू ने कुछ खास नैनो मटीरियल और तत्वों से यह स्याही बनाई। जहरीली नहीं होने के साथ इसमें ज्यादा प्रकाश छोड़ने की क्षमता है। इसे पीवीसी गोल्ड मीडियम इंक के साथ मिलाकर देखा गया। यह मिली-जुली स्याही मनचाहे पैटर्न या लिखावट में ढल सकती है। उन्होंने बताया कि नकली चीजों की रोकथाम में इस स्याही से होने वाले टैग बेहद उपयोगी साबित हो सकते हैं। इनके जरिए आम आदमी भी नकली और असली में फर्क पहचान सकता है।

कॉप-26-काफी नहीं है राष्ट्रीय निर्धारित योगदान, पैसे की कमी से प्रगति में रुकावट

ग्लासगो 26वां संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन, जिसे संक्षेप में कॉप-26 के नाम से जाना जाता है, शुरू होने में अब तीन दिन बाकी हैं। उससे पहले जारी दो रिपोर्टों में बताया गया है कि दुनिया का तापमान बढ़ने से रोकने के लिए तैयार किए पेरिस समझौते का लक्ष्य हासिल करने में तमाम देशों के प्रयास नाकाफी है। इसके साथ ही जलवायु परिवर्तन के लिए किए जा रहे आर्थिक उपाय भी निराशाजनक हैं। जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क कन्वेंशन (यूएनएफसीसीसी) की एक दिन पहले राष्ट्रीय निर्धारित योगदान यानी एनडीसी सिंथेसिस रिपोर्ट में यह जानकारी सामने आई। रिपोर्ट परिष्कृत एनडीसी का मूल्यांकन करती है।

इसका पहला हिस्सा इसी साल फरवरी में प्रकाशित हुआ था और पूरी रिपोर्ट पिछले महीने तैयार हुई थी। नई रिपोर्ट, जो सितंबर की रिपोर्ट का संशोधित अंक है, में 12 अक्टूबर 2021 तक के राष्ट्रीय निर्धारित योगदान यानी एनडीसी को शामिल किया गया है।रिपोर्ट इसकी तस्दीक करती है कि साल 2030 तक ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन साल 2010 की तुलना में 16 गुना ज्यादा होगा। कुल मिलाकर 2030 तक सारे एनडीसी का ग्रीनहाउस गैस-उत्सर्जन 54.9 गीगाटन होने का अनुमान लगाया है, जो इतनी ही कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा के बराबर होगा। रिपोर्ट के मुताबिक, इससे सारे एनडीसी मिलकर दुनिया का तापमान 2.7 डिग्री बढ़ा देंगे। संयुक्त राष्ट्र की विज्ञान शाखा, जलवायु-परिवर्तन पर अंतरसरकारी पैनल यानी आईपीसीसी का निर्देश है कि इसी अवधि में उत्सर्जन का 45 फीसदी कम किया जाए। इसका मकसद वैश्विक तापमान की सीमा 1.5 डिग्री सेल्सियस तय करना और जलवायु परिवर्तन से होने वाले विनाशकारी दुष्प्रभावों को रोकना है। रिपोर्ट में यूएनएफसीसीसी को भेजे गए 116 एनडीसी का विश्लेषण किया गया है। इसमें दावा किया गया है कि 2010 की तुलना में 2030 में नौ फीसद कम ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन होगा। भारत समेत कई विकासशील देशों ने राष्ट्रीय निर्धारित योगदान यानी एनडीसी के लिए अपने 'अनुकूल' लक्ष्य तय किए हैं। ये लक्ष्य ऐसे हैं, जो तभी हासिल किए जा सकते हैं, जब ये देश अपने उपलब्ध आर्थिक व तकनीक संसाधनों और अन्य क्षमताओं का समुचित उपयोग करें। रिपोर्ट के मुताबिक, अगर ये देश ऐसा नहीं करते तो ग्रीनहाउस गैस-उत्सर्जन 2030 से पहले ही अधिकतम सीमा तक पहुंच सकता है। दूसरी ओर आर्थिक मोर्चे पर भी स्थिति निराशाजनक है। पेरिस समझौते के अनुसार, 2015 से 2025 तक हर साल जलवायु परिवर्तन के लिए विकसित देशों की ओर से विकासशील देशों को 100 बिलियन डालर ट्रांसफर किए जाने थे, यह राशि इसके बाद बढ़नी भी थी। आर्थिक सहयोग और विकास संगठन (ओईसीडी) ने अमीर देशों से मिले आंकड़ों से पाया कि 2018 में महज 78 बिलियन डालर विकासशील देशों को दिए। हालांकि कल्याणकारी संगठन ऑक्सफैम की पिछली क्लाईमेट शैडो रिपोर्ट, 2020 के आंकड़े कुछ और ही कहते हैं। इसने पाया कि 2017-18 में यह राशि 19 से 22.5 बिलियन डालर के बीच ही थी, जो ओईसीडी के आकलन से लगभग तीन गुना कम है। एक दिन पहले कनाडा और जर्मनी के पर्यावरण मंत्रियों ने जलवायु के लिए अपने-अपने आर्थिक सहयोग का खाका पेश किया। जिसमें पाया गया कि विकसित 100 बिलियन डालर का लक्ष्य 2021, 2022 और 2023 में भी नहीं पूरा नहीं कर पाएंगे। हालांकि उन्होंने यह उम्मीद जताई कि उसके बाद वे 2025 तक हर साल निर्धारित योगदान दे पाएंगे। उनके मुताबिक, इसके लिए उन्होंने लोगों और अन्य बहुस्तरीय आर्थिक सहयोग का सहारा लेना होगा। जाहिर है कि यह विकसित देशों की नाकामी है, जिससे ग्लासगो के सम्मेलन में विकासशील देशों का नाराज होना स्वाभाविक है। यूएनएफसीसीसी के तहत वित्तीय संबंधी स्थायी समिति ने पाया कि विकासशील देशों को जलवायु परिवर्तन की दिशा में 2030 तक प्रभावी तरीके से कदम उठाने के लिए 5.8 से लेकर 5.9 ट्रिलियन डालर की जरूरत है। यह उनके एनडीसी में सूचीबद्ध जलवायु-परिवर्तन के कामों के आधे से भी कम को वित्तपोषित करने और ग्लोबल वार्मिंग को नियंत्रण में रखने के लिए होगा। इस तरह 100 बिलियन डॉलर की रकम, विकासशील दुनिया की वास्तविक जरूरतों का प्रतिबिंब नहीं है। यह विकासशील देशों के लिए एक 'जलवायु कर्ज-जाल' का जोखिम भी पैदा करता है, जैसा कि गार्जियन अखबार में एक अज्ञात वार्ताकार ने लिखा भी है। यह इसलिए है क्योंकि पिछले सालों में विकासशील देशों को मिली राशि का ज्यादा हिस्सा, अनुदान की बजाय कर्ज के रूप में दिया गया है। गौरतलब है कि 26वां संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन, ग्लासगो में 31 अक्टूबर से शुरू हो रहा है।

साभार - डाउन टू अर्थ

जलवायु में बदलाव के चलते स्वास्थ्य से लेकर खाद्य सुरक्षा पर मंडरा सकता है संकट

मुंबई। एक नए शोध में पाया गया है कि उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में सबसे ज्यादा गर्म दिनों के चलते जलवायु परिवर्तन में बढ़ोतरी होगी। जिससे उष्णकटिबंधीय इलाकों में गंभीर प्रभाव पड़ेंगे। यह शोध सेंट एंड्रयूज विश्वविद्यालय की अगुवाई में किया गया है। अध्ययनकर्ता ने बताया कि 18 जलवायु मॉडलों द्वारा किए गए सिमुलेशन से उष्णकटिबंधीय इलाकों में तापमान बढ़ने का पूर्वानुमान लगाया गया है। पूर्वानुमान के मुताबिक उष्णकटिबंधीय इलाकों में, गर्म दिन औसत दिनों की तुलना में काफी अधिक गर्म होंगे। उदाहरण के तौर पर देखे तो, सबसे गर्म 5 फीसदी दिनों में औसत दिन की तुलना में 20 फीसदी अधिक गर्म होने की आशंका है। अत्यधिक तापमान का असर अफ्रीका, एशिया और अमेरिका के बड़े हिस्सों में मानव स्वास्थ्य, पारिस्थितिक तंत्र और जंगल में आग लगने की घटनाओं पर पड़ेगा। भूमि के सतही तापमान में अत्यधिक बढ़ोतरी के चलते एशिया और अफ्रीका में खाद्य उत्पादन पर गंभीर प्रभाव पड़ने की आशंका है। सेंट एंड्रयूज विश्वविद्यालय में स्कूल ऑफ अर्थ एंड एनवायरनमेंटल साइंसेज के अध्ययनकर्ता डॉ माइकल बायर्न ने कहा कि गर्म दिनों में तेजी से बढ़ते तापमान को समझाने के लिए वायुमंडलीय गतिशीलता की अवधारणाओं का उपयोग किया गया है। विशेष रूप से, वह दिखाता है कि उष्णकटिबंधीय जलवायु के दो पहलू हैं जिसमें बार-बार तुफानों का आना, पृथ्वी के घूमने के कमजोर प्रभाव को इसके द्वारा नियंत्रित किया जाना आदि के कारण यह देखना कि बदलते मौसम में गर्म दिन कैसे प्रतिक्रिया करते हैं। डॉ बायर्न ने कहा कि यह अध्ययन उष्णकटिबंधीय भूमि पर अत्यधिक तापमान निर्धारित करने वाली प्रक्रियाओं को समझने के लिए एक सरल सिद्धांत पेश करता है। सिद्धांत के अनुसार, गर्म दिनों में तापमान तेजी से बढ़ जाता है क्योंकि वे दिन शुष्क होते हैं। जो कि सुखाने वाले तापमान कातंत्र कह लाता है। यह सिद्धांत उष्णकटिबंधीय जलवायु और लू या हीट वेव की हमारी समझ में एक महत्वपूर्ण अंतर को दिखाता है। अध्ययनकर्ता ने कहा मुझे आशा है कि अध्ययन का सिद्धांत के साथ-साथ जलवायु मॉडल और अवलोकनों का उपयोग करके, उष्णकटिबंधीय और वहां के चरम मौसम की हमारी समझ को बढ़ाएगा तथा आने वाले समय में और शोधों को बढ़ावा देगा।

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक सोनल मेहता केलिए प्रतीक्षा ग्राफिक्स, 127 देवी अहिल्या मार्ग, इंदौर (म.प्र.) से मुद्रित एवं 209-बी शहनाई रेसीडेंसी-2 कनाड़िया रोड इंदौर (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक: डॉ. सोनल मेहता फोन : 0731-2595008 Mail.sonal12mehta@yahoo.co.in 9755040008